

तेरापंथ की अग्रणी साध्वियाँ

□ साध्वी श्री मधुस्मिता

युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी की शिष्या

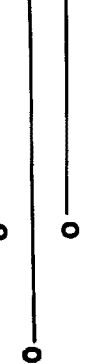
एक व्यक्ति ने एक बार तेरापंथ के प्रथम आचार्य भीखणजी से कहा—भीखणजी ! आपका तीर्थ अधूरा है । भीखणजी ने पूछा—कैसे ? उसने कहा—आपके तीर्थ में साधु, श्रावक और श्राविकाएँ हैं साध्वियाँ नहीं हैं । तब तक तेरापंथ में बहिनें दीक्षित नहीं हुई थीं । तीर्थ वास्तव में अधूरा था । संयोग से वि० सं० १८२१ में तीन बहिनें दीक्षित होने हेतु आचार्य भिक्षु के सम्मुख उपस्थित हुईं । आचार्य भिक्षु ने उनसे प्रश्न किया—यदि संयोगवश एक की मृत्यु हो जाए तो शेष दो को आजीवन संलेखना करनी पड़ेगी । तीन साध्वियों से कम रहना कल्पता नहीं । तत्क्षण तीनों ने कहा—हमें मंजूर है । आचार्य भिक्षु ने तीनों को प्रव्रजित कर लिया । साध्वियों की संख्या क्रमशः अभिवृद्धि को प्राप्त होती रही । न केवल संख्या की दृष्टि से ही, अपितु साध्वी समाज का गुणात्मक विकास भी होता गया । आज तेरापंथ धर्म संघ अपने दो शतक पूरे कर अब तीसरे शतक में जल रहा है । इस अवधि में लगभग दो हजार बहिनों ने दीक्षा ली और आत्म-साधना के साथ-साथ जनहित में पूर्ण योग दिया है । आचार्य भिक्षु ने साध्वी समाज को एक व्यवस्था दी । उत्तरवर्ती आचार्यों ने समय-समय पर उसको संवर्द्धित किया, युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी ने तो साध्वी समाज के युगीन विकासार्थ अपने बहुमूल्य समय का विसर्जन किया है, कर रहे हैं ।

इस लेख में केवल उन साध्वियों के जीवन प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिन्होंने साध्वी समाज का नेतृत्व कर अपनी बुद्धि और विवेक के बल पर नारी जाति के जागरण में योगदान दिया है । अब तक तेरापंथ शासन में ११ साध्वी-प्रमुखाएँ हुई हैं—

- | | |
|-------------------------|-----------------------|
| १. महासती बरजूजी | २. महासती हीराजी |
| ३. महासती दीपांजी | ४. महासती सरदारांजी |
| ५. महासती गुलाबांजी | ६. महासती नवलांजी |
| ७. महासती जेठांजी | ८. महासती कानकुमारीजी |
| ९. महासती शमकूजी | १०. महासती लाडांजी |
| ११. महासती कनकप्रभाजी । | |

प्रथम तीन साध्वियाँ प्रमुखा पद प्राप्त नहीं थीं, किन्तु उन्होंने साध्वी-प्रमुखा की तरह सारा कार्यभार संभाला था, अन्य ८ साध्वियों को आचार्यों ने साध्वीप्रमुखा पद पर स्थापित कर साध्वी समाज की देखरेख का कार्यभार सौंपा । सर्वप्रथम जयाचार्य ने महासती सरदारांजी को विधिवत् प्रमुखा पर नियुक्त किया । प्रस्तुत है अग्रणी साध्वियों का उपलब्ध जीवनवृत्त ।

१. महासती दीपांजी—साध्वी श्री दीपांजी का जीवन अनेक गुणों से परिपूर्ण था । सहज श्रद्धा का उद्रेक, चरित्र के प्रति निष्ठा, संयम के प्रति अनुराग, सहधार्मिकों के प्रति स्नेह और वात्सल्य ये आपके मौलिक गुण थे । निर्भीकता, वाक्कौशल, गति, मति, स्थिति गुरुदृष्टि-अनुसारिणी थी । पठन-पाठन में विशेष रुचि थी । एक बार डाकू से साक्षात्कार हुआ । उसने साध्वियों को लूटना चाहा । आपने ओज भरे शब्दों से कहा—“हम जैन साध्वियाँ हैं ।



पुरुष का स्पर्श नहीं करती। छूना मत।” सामान नीचे रख दिया। एक वृत्त बनाकर सभी साध्वियाँ बैठ गयीं। महासती दीपांजी उनके बीच में बैठ गयीं। उच्च स्वर से नमस्कार महामन्त्र का जाप शुरू कर दिया, लुटेरे ने समझा यह तो किसी देवी आराधना कर रही है, न मालूम मेरी क्या दशा कर देगी। वह डरकर सामान छोड़कर भाग गया। आपका जन्म स्थान जोजावर था। आचार्य भारमलजी के हाथों १६ वर्ष की अवस्था में दीक्षा ली। ५० वर्ष तक साधना कर वि० सं० १९१८ की भाद्रपद कृष्णा ११ को आमेठ में २० प्रहर के अनशनपूर्वक स्वर्ग सिधारी।

२. महासती सरदारांजी—संकल्प में बल होता है और आशा में जीवन। सरदारां सती का जीवन संकल्प और आशा की रेखाओं का स्पष्ट चित्र है। वि० सं० १८६५ में चूरु में आपका जन्म हुआ। दस वर्ष की बाल्यावस्था में विवाह हुआ। चार मास पश्चात् पति का विधोग सहन करना पड़ा। सुकुमार हृदय पर वज्राघात लगा। उसी वर्ष मुनि श्री जीतमलजी का चातुर्मास चूरु में हुआ। सरदारसती ने उसपावस में अपनी जिज्ञासाओं का समुचित समाधान पा तत्वों को मान, तेरापंथ की श्रद्धा स्वीकार की। १३ वर्ष की अवस्था में यावज्जीवन चौविहार का व्रत ले लिया, सचित्त त्याग आदि अनेक प्रत्याख्यान किए, विविध प्रकार का तप करके आपने साधना पक्ष को परखा। दीक्षा ग्रहण की भावना उत्कट हुई। पारिवारिक जनों के बीच अपनी भावना रखी। स्वीकृति न मिलने पर सरदारसती ने अनेकों प्रयास किए, सब कसौटियों पर खरी उतरने के पश्चात् दोनों पारवारों से अनुज्ञा प्राप्त हुई। दीक्षा श्रीमज्जाचार्य के हाथों सम्पन्न हुई। लूचन अपने हाथों से किया। प्रथम बार आचार्यश्री रामचन्दजी के दर्शन किए तब औपचारिक रूप से अग्रगण्या बना दिया। दीक्षा के १३ वर्ष बाद आपको साध्वीप्रमुखा का पद मिला। जयाचार्य को आपकी योग्यता व विवेक पर विश्वास था। प्रखर बुद्धि के कारण एक दिन में २०० पद्य कंठस्थ कर लेती थीं। सहस्रों पद कंठस्थ थे। उन दिनों साधु-साधवियों का हस्तलिखित प्रतियों पर अपना अधिकार था। महासती सरदारांजी ने एक उपाय ढूँढ़ निकाला। सारी पुस्तकें सरदारसती को अर्पित की गईं। सरदारसती ने सारी पुस्तकें जयाचार्य को भेंट कर दी। जयाचार्य ने आवश्यकतानुसार सबका संघ में वितरण कर दिया। विवेक और बुद्धि कौशल के आधार पर ही उन्होंने साधवियों के हृदय परिवर्तन कर अनेक ग्रुप तैयार किये, जिन्हें तेरापंथ की भाषा में सिखाड़ा कहते हैं। जयाचार्य का आदेश पा आपने एक रात्रि में ५२ साधवियों के १० संघाटक तैयार कर श्रीमज्जाचार्य से निवेदन किया। आचार्यश्री आपकी कार्य-कुशलता व तत्परता पर बहुत प्रसन्न हुए। आहार के समविभाग की परम्परा का श्रेय भी सरदारसती को ही है। साधु जीवन में विविध तपस्याएँ की, अनेक साधवियों की प्रोत्साहित किया। अन्त में वि० सं० १९२७, पौष कृष्णा ८ को आजीवन अनशन (पाँच प्रहर के अनशन) में आपका स्वर्गवास हुआ।

३. महासती गुलाबांजी—हृदय में कोमलता, भाषा की मधुरता और आँखों की आर्द्रता—ये नारी के सहज गुण हैं। साध्वी श्री गुलाबांजी में इनके साथ-साथ व्यक्तित्व का सुयोग भी था।

जिसका जीवन विवेक रूपी सौन्दर्य से अलंकृत है। वही वास्तव में सुन्दर है, महासती गुलाबांजी में बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के सौन्दर्य का सहज मेल था। शरीर की कोमलता, अवयवों की सुन्दर संघटना, गौरवर्ण—ऐसा था उनका बाह्य व्यक्तित्व। मिलनसारिता, विद्वत्ता, सौहार्द, वात्सल्य और निश्छलभाव—यह था आपका आन्तरिक व्यक्तित्व।

आपकी दीक्षा जयाचार्य के करकमलों से हुई। महासती सरदारांजी से संस्कृत व्याकरण तथा काव्य का अध्ययन किया। मेधावी तीव्रता और ग्रहण-पटुता से कुछ समय में ही विदुषी बन गयी।

श्रीमज्जाचार्य ने भगवती सूत्र की राजस्थानी भाषा में पद्यबद्ध टीका करनी प्रारम्भ की। आचार्यश्री पद्य फरमाते और आप एक बार सुनकर लिपिबद्ध कर लेतीं। एक समय में ६, ७ पद्यों को सुनकर याद रख लेतीं। आपकी लिपि सुघड़ और स्पष्ट थी। आपने अनेकों ग्रन्थ लिपिबद्ध किए।

व्याख्यान कला बेजोड़ थी। कण्ठ का माधुर्य रास्ते में चलते पथिक को रोक लेता था। वि० सं० १९२७ में साध्वीप्रमुखा का कार्यभार संभाला। १५ वर्ष तक इस पद पर रही। आपके अनुशासन में वात्सल्य मूर्तिमान था। समस्त साध्वी-समाज का विश्वास आपको प्राप्त था। आपका स्वर्गवास १९४२ की पौष कृष्णा नवमी को हुआ।

४. **महासती नवलांजी**—आपका जन्म सं० १८८५ में हुआ। बाल्यावस्था में ही विवाह हो गया। कुछ वर्ष पश्चात् ही पति का वियोग सहन करना पड़ा। तृतीय आचार्य श्री ऋषिराय जी के कर-कमलों से दीक्षा संस्कार सम्पन्न हुआ। आपने दीक्षा के दिन अपना केश लुंचन स्वयं अपने हाथों से किया।

विवेक, नम्रता आदि गुणों से योग्य समझकर आचार्यश्री ने आपको बहुत सम्मान दिया, उसका उदाहरण है, आपको उसी दिन 'साक्ष' की वन्दना करवाई गई।

आपने बत्तीस आगमों का वाचन किया। तत्त्व को गहराई से पकड़ती और निपुणतापूर्वक अन्य जनों को समझातीं। कण्ठ में माधुर्य और गाने की कला सुन्दर थी। पुस्तकें और सिंघाड़े की साधवियों को समर्पित करने की पहल आपने की। जय गणि के शासन काल में १३ वर्ष तक गुरुकुल-वास का सुन्दर अवसर आपको प्राप्त हुआ। १२ वर्ष ६ माह तक अग्रणी रूप में बहिर्विहार करते हुए जन-जीवन को जागृत किया।

आचार्यश्री रायचन्द जी, आचार्यश्री जीतमलजी, आचार्यश्री मधराजजी, आचार्यश्री माणकचन्दजी, आचार्यश्री डालगणि इन पाँच आचार्यों की आज्ञा और ईंगित की आराधना करती हुई आचार्यों की करुणा-दृष्टि की पात्र बनीं।

ज्येष्ठा और कनिष्ठा सभी साधवियों को आप से अनहद वत्सलता मिलती। ३ वर्ष तक बीदासर में आपका स्थिरवास हुआ। आपाढ़ कृष्णा पंचमी के दिन नव प्रहर के अनशनपूर्वक ६९ वर्ष की अवस्था में समाधिपूर्वक स्वर्गगमन किया।

५. **महासती जेठांजी**—आपका जन्म वि० सं० १९०१ में हुआ। दीक्षा वि० सं० १९१६ में चूरू में हुई। प्रमुखा पद वि० सं० १९५५ में लाडनू में प्राप्त हुआ। आपका स्वर्गवास वि० सं० १९८१ में राजलदेसर में हुआ।

व्यक्तित्व स्वयं एक ज्योति है। वह स्वयं प्रकाशशील है। साध्वीश्री जेठांजी व्यक्तित्व की धनी थीं। शरीर सम्पदा से आपकी आन्तरिक सम्पदा कहीं अधिक महान् थी। यही कारण था कि आपका जीवन उत्तरोत्तर आदर्श बनता गया और उसने आपको तपस्या को अपने में मूर्तकर शरीर के प्रति अभयत्व की भावना का पाठ पढ़ाया।

आपके दो दशक गृहस्थवास में बीते। इस अल्प अवधि में अनेक सुख-दुःखात्मक अनुभूतियाँ आपको हुईं। आपका कुटुम्ब समृद्धिशाली था। आपका विवाह हुआ परन्तु १६वें वर्ष में प्रवेश पाते ही पति का वियोग हो गया और आपका सर्वस्व लुट गया। सब कुछ खोकर भी आपने वह पाया जो अमर आनन्द देने वाला था। दुःख वैराग्य की सुखमय अनुभूति में बदल गया।

जयाचार्य के कर-कमलों से दीक्षा संस्कार हुआ। सरदार सती की सन्निधि में शिक्षण चला। रुचि एकनिष्ठ थी। महासती सरदारांजी की वैयावृत्य और शासन के कतिपय कार्यों का दायित्व स्वयं ले लिया। आपने सेवा व्रत को अपने जीवन का अंग बना लिया। ग्लान साधु-साधवियों के लिए औषधि का सुयोग मिलाने का कार्य आपने पूर्ण तत्परता से निभाया। नवदीक्षिता साधवियों को आपकी देख-रेख में रखा जाता। आप उन्हें सुसंस्कारों से संस्कारित बनातीं। कष्टसहिष्णुता का मर्म समझातीं।

तेरापंथ के सप्तमाचार्य श्री डालगणि ने आपको प्रमुखा पद पर स्थापित किया। आपकी सेवाओं के विषय में डालगणि कहते—“जेठांजी की सेवाएँ अनुकरणीय हैं। इन्होंने आचार्यों तथा साधु-साधवियों की बहुत सेवाएँ कीं। इनसे सेवा करना सीखो।”

साध्वी श्री जेठांजी ने १७ और २ को छोड़कर २२ तक चौविहार तपस्या की। तेरापंथ में यह चौविहार तपस्या का उत्कृष्ट उदाहरण है। सहज सौन्दर्य, कर्तव्य-निष्ठा, गुरु-भक्ति सहज ही जन जन को आकृष्ट कर लेती थी।

कालूगणि फरमाया करते—“जेठांजी की देखरेख में कितनी भी साधवियों को रखा जाए, उनकी व्यवस्था के



बारे में मुझे चिन्ता नहीं करनी पड़ती ।" इन वचनों में उत्तरदायित्व के प्रति उनकी निष्ठा एवं अपने आश्रित के प्रति वात्सल्य की पूर्ण झलक है ।

६. महासती कानकंवरजी—आपका जन्म वि०सं० १९३० में श्री डूंगरगढ़ में हुआ । दीक्षा वि०सं० १९४४ में बीदासर में हुई । प्रमुखा-पद वि०सं० १९८१ को चूरू में प्राप्त किया ।

अहिंसा और अभय एकार्थक है । जहाँ अभय है वहाँ अहिंसा के भाव फूलते-फलते हैं । महासती कानकुमारीजी का जीवन इन दोनों का समवाय था । उनमें यदि तारी की सुकुमारता थी तो साथ-साथ पौरुष का कठोर अनुबन्ध । एक बार विहार में—एक छोटे से गाँव में रुकना पड़ा । रात्रि में वहाँ चोर आये, बाहर सोये कासीद को रस्सी से बाँध दिया और अन्दर घुसे । महासती कानकंवरजी ने सब साध्वियों को जगाकर महामन्त्र का जाप करना शुरू कर दिया । चोर बोले तुम्हारे पास जो कुछ है, वह हमें दे दो । महासती ने पन्ने निकालते हुए कहा—इनमें अमूल्य रत्न भरे हैं । और संगीत की थिरकती हुई स्वर लहरी उनके कानों में गूँजने लगी । उसमें बहुत सुन्दर भाव थे । चोरों का मन बदल गया और अपनी धृष्टता के लिए क्षमा माँगते हुए चले गये ।

कला जीवन का उदात्त पक्ष है । जो जीने की कला में निपुण है, वह सब कलाओं में निपुण है । आपका जीवन कला की स्फुट अभिव्यक्ति था । जीवन कला के साथ-साथ अन्यान्य कलात्मक वस्तुओं के निर्माण का शिक्षण देना भी आप अपना कर्तव्य समझती थीं । अपनी सन्निधि में रहने वाली साध्वियों को सभी कलाएँ सिखातीं । आप कला में बेजोड़ थीं । आपके अनुशासन में “वज्रादपि कठोराणि मूढानि कुसुमादपि” यह उक्ति चरितार्थ होती थी ।

स्वाध्याय की विस्मृति न हो जाए, यह स्वाध्याय का गौण पक्ष है; मुख्य पक्ष है तत्सम आनन्दानुभूति । महासती कानकंवरजी स्वाध्याय में लीन रहतीं । ६ आगम, अनेक भजन, स्वतन, थोकड़े कण्ठस्थ थे । रात में घण्टों पुनरावर्तन करतीं । दिन में आगम-वाचन करती । वर्ष भर में ३२ आगमों का वाचन हो जाता ।

आपको साध्वी समाज का अटूट विश्वास प्राप्त था । इसका हेतु था अप्रतिम और निश्छल वात्सल्य । दूसरों को समाधि पहुँचाने में अपना स्वार्थ त्याग करने हेतु सबसे आगे थीं ।

व्याख्यान शैली प्रभावोत्पादक थी । बड़े-बड़े साधु आपके सामने व्याख्यान देने में सकुचाते थे । आपके प्रति साधुओं के हृदय में बहुमान था ।

आपके बारे में आचार्यश्री तुलसी ने ‘कालू यशोविलास’ में लिखा है—

संचालन शैली सुधड़ ज्ञान ध्यान गलतान ।
कानकंवर गण में लह्यो गुरु कृपा सम्मान ॥
निमल नीति युत पालियो चरण रमण सुविलास ।
बाल्यकाल ब्रह्मचारिणी वर्षे गुण पचास ॥
श्रुति स्वाध्याय विलासिनी हसिनी-कर्मकठोर ।
विकथावाद विनासिनी आश्वासिनी मन मोर ॥
अति सुखपूर्वक समालियो निजसंयम जीतव्य ।
वाह ! वाह सती महासती अवसर लह्यो ! अलभ्य ॥

वि०सं० १९६३ भाद्रपक्ष कृष्ण ५ को अत्यन्त समाधिस्थ अवस्था में राजलदेसर में आपका स्वर्गवास हुआ ।

७. महासती झमकूजी—आपका जन्म-स्थान रतन नगर था । गर्भावस्था में माता को लक्ष्मी का स्वप्न दिखायी दिया । स्वप्न में ही माँ ने पूछ लिया—यह क्या ? उत्तर मिला—यह कन्या तेरे कुल की शृंगार बनेगी । अतुल स्नेह और वात्सल्य से पालन-पोषण हुआ । अल्पवय में पाणिग्रहण हो गया । समुराल में जन-धन की वृद्धि

होने से आपको लक्ष्मी के रूप में स्वीकार किया गया। योग्यता के कारण कुछ दायित्व तत्काल सौंप दिये। अचानक पति का वियोग हो गया। पुत्री के वैधव्य की बात सुन पिता तीन दिन मूर्च्छित रहे। स्वप्न में आवाज आयी—यह अप्रत्याशित दुःख इसके जीवन को अमरत्व प्रदान करेगा।

एक बार स्वप्न में महासती ने आम्न से लदे हुए वृक्ष को देखा। मन में दीक्षा का संकल्प किया। माता-पिता का स्नेह और सास-ससुर का अनुराग उन्हें बांध नहीं सका। दीक्षा से पूर्व पतिगृह की रखवाली का भार आप पर था।

दीक्षा के समय आपके जेठ ने कहा—‘जितना दुःख मेरे कनिष्ठ भ्राता की मृत्यु पर नहीं हुआ उतना आज हो रहा है। मेरे घर की रखवाली अब कौन करेगा?’ ये उद्गार दायित्व के प्रति इनकी गहरी निष्ठा और कुशलता के परिचायक हैं।

आपके मन में कला के प्रति सहज आकर्षण था। हर कार्य में स्फूर्ति और विवेक सदा बना रहता था। १५ मिनट में चोलपट्टे को सीना, एक दिन में रजोहरण की २५ कलिकाओं को गूँथना स्फूर्ति के परिचायक हैं। गृहस्थ-जीवन में रहते हुए भी आपने अनेक साधवियों को सूक्ष्म कला सिखायी।

आप स्वाध्याय-रसिक थीं। शैक्ष, ग्लान, वृद्ध की परिचर्या में विशेष आनन्दानुभूति होती थी। जब कभी शल्य-चिकित्सा का प्रसंग आता तो अपने हाथों से उस कार्य को सम्पन्न कर देतीं। हाथ था हल्का और साथ-साथ कार्यकुशलता। एक बार कालूगणि चातुर्मास के लिए चूरू पधार रहे थे। नगर प्रवेश का मुहूर्त ६॥ वजे था। दूरी थी ६ मील की। आचार्यश्री इतने शीघ्र किसी हालत में वहाँ पहुँच नहीं सकते थे। अतः प्रस्थाना रूप आपको भेजा। आप एक घण्टे में ६ मील पहुँच गयीं। स्मृति और पहचान अविकल थी। वर्षों बाद भी दर्शनार्थी की वन्दना अँधेरे में नामोच्चारणपूर्वक स्वीकार करतीं। दर्शनार्थी गद्गद् हो जाते और अपना सौभाग्य समझते।

हर्ष से विह्वल और शोक से उद्विग्न होने वाले अनेक हैं। दोनों अवस्थाओं में समरस रहने वाले विरले मिलेंगे। कालूगणि का स्वर्गवास हुआ। सर्वत्र शोक का वातावरण था। ऐसी विकट स्थिति में आपने धैर्य का परिचय दिया। सब में साहस का मन्त्र फूँका। वह शोक अभिनव आचार्य पद प्राप्त तुलसी गणि के अभिनन्दन में हर्ष बनकर उपस्थित हुआ।

तेरापंथ शासन की ३७ वर्षों तक सेवाएँ कीं। आचार्यों का विश्वास, साधु-साधवियों का अनुराग, श्रावक समुदाय की अविकल भक्ति को स्वीकार करती हुई साधना की आनन्द मुक्ताओं को समेटती-बिखेरती वि० सं० २००२ में पूर्ण समाधि में इस संसार से चल बसी। आज उनकी केवल स्मृति रह गयी है जो अनेक कार्यों में प्रतिबिम्बित होकर विस्मृति को स्मृति बना देती है।

८. महासती लाडांजी—आपका जन्म वि० सं० १९६० में लाडनू में हुआ तथा दीक्षा भी लाडनू में ही वि० सं० १९८२ में हुई।

साध्वी-प्रमुखा पद-प्राप्ति वि० सं० २००२ में हुई। विवाह के अनुरूप आयु होने पर विवाह किया गया किन्तु अल्पसमय पश्चात् ही पति-वियोग सहना पड़ा। वैराग्य का अंकुर प्रस्फुटित हुआ। आपकी दीक्षा अष्टमाचार्यश्री कालूगणि के करकमलों से मुनि तुलसी, जो बाद में तेरापंथ के नवम आचार्य बने, के साथ हुई। किसने ऐसा चिन्तन किया था कि इस शुभ मुहूर्त में दीक्षित होने वाले ये दोनों साधक शासन के संचालक बनेंगे। शासन का सौभाग्य था।

कालूगणि के स्वर्गारोहण के पश्चात् तुलसी गणि पदासीन हुए। महासती लाडांजी को गुरुकुलवास मिला। महासती झमकूजी के स्वर्गारोहण के पश्चात् उनका कार्यभार महासती लाडांजी सौंपा गया।

युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी का जीवन क्रान्ति का जीवन है। आचार्यवर्य के कुशल नेतृत्व में साधु-साधवियों



ने अनेकों क्षेत्रों में विकास किया। महासती लाडांजी ने उस विकास को शतगुणित किया। साध्वियों ने शिक्षा के क्षेत्र में जो प्रगति की है उसका श्रेय प्रमुख रूप से साध्वीप्रमुखाजी को ही है। वे प्रेरणास्रोत थीं। जीवन भर प्रेरणा-दीप बनकर जलती रहीं। सागर में गागर समाये इसमें कोई आश्चर्य नहीं किन्तु गागर में सागर समा जाए वह आश्चर्य है। साध्वीप्रमुखा श्री लाडांजी ने गागर बनकर जीवन बिताया किन्तु उनमें सागर लहराता रहा। जिज्ञासा जीवन का जीवन्त आधार है। आप में जिज्ञासाएँ प्रबल थीं। यत्र-तत्र जिज्ञासाओं को शान्त कर अपनी गागर को भर लेतीं।

आप अभय थीं, भय था तो केवल पाप का। आचार-कौशल इसका फलित था। साध्वीप्रमुखा का पद उन्हें मिला। वे पद से शोभित नहीं थीं, पद उनसे सुशोभित हुआ। वे असामान्य थीं, पर उन्होंने सामान्य से कभी नाता नहीं तोड़ा। वे निःस्पृह थीं। उन्हें सब कुछ मिला पर उसमें आसक्त न बनीं। उनकी मृदुता, सौम्यता, निडरता और कष्ट-सहिष्णुता विलक्षण थी। उनका भौतिक शरीर रोगग्रस्त हुआ किन्तु मनोबल सदा स्वस्थ रहा।

बहुत वर्ष तक निरन्तर रक्तस्राव की बीमारी ने आपकी सहिष्णुता को द्विगुणित कर दिया। चिकित्सकों ने तो कैसर तक की कल्पना कर ली। वि० सं० २०२३ में आचार्य प्रवर ने दक्षिण यात्रा प्रारम्भ की। महासती लाडांजी को बीदासर में अस्वस्थता के कारण रुकना पड़ा। व्याधि ने भयंकर रूप धारण कर लिया। जलोदर की भयंकर वेदना में भी चार-चार सूत्रों का स्वाध्याय चलता। अत्यन्त समभाव से वेदना को सहन किया। थोड़े ही महिनो में तीन बार पानी निकाला गया। डाक्टर पर डाक्टर आने लगे। सबकी आवाज थी कि इस बीमारी का आपरेशन के सिवा कोई इलाज नहीं। पर आपने स्वीकृति नहीं दी। हँसते-हँसते समरांगण में सुभट की भाँति आत्मविजयी बनीं। आपकी सहिष्णुता को देख, सुनकर महामना आचार्य प्रवर ने आपको “सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति” उपाधि से अलंकृत किया।

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी की रात्रि के ३। बजे अनशनपूर्वक कायोत्सर्ग की मुद्रा में स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया।

६. साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी—आपका मूल निवास स्थान लाड़नू था। वि० सं० १९६८ में कलकत्ता में आपका जन्म हुआ। आपने वि० सं० २०१७ की आषाढी पूर्णिमा को केलवा में आचार्य तुलसी से दीक्षा ग्रहण की। साध्वीप्रमुखा का पद वि० सं० २०२८ में गंगाशहर में प्राप्त हुआ।

धार्मिक परिवार में जन्म होने से बचपन से ही आपको धर्म के संस्कार प्राप्त हुए। आपके मन में वैराग्य के अंकुर प्रस्फुटित हुए, पर संकोचशीला बालिका होने के कारण सबके सामने अपने विचार प्रकट नहीं किये।

वैराग्य भावना बलवती होती गई। आखिर सं० २०१३ भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशी के दिन आपको श्री पार-मार्थिक शिक्षण संस्था में प्रविष्ट किया गया। आपका प्रत्येक कार्य शालीनता व विवेकपुरस्सर होता। साधना की भूमिका में निष्णात पाकर आचार्यश्री तुलसी ने आपको दीक्षा की स्वीकृति प्रदान की। फलस्वरूप तेरापंथ द्विशताब्दी समारोह के ऐतिहासिक अवसर पर मेवाड़ में स्थित ऐतिहासिक स्थल केलवा में आपका दीक्षा संस्कार सम्पन्न हुआ। दीक्षा के पश्चात् आपकी स्फूर्तप्रज्ञा और अधिक उन्मिषित हुई। एकान्तप्रियता, गम्भीरता, स्वल्पभाषण, निष्ठापूर्वक कार्य-संचालन आपकी विरल विशेषताएँ हैं। अप्रमत्तता आपका विशेष गुण है। पश्चिम रात्रि में उठकर सहस्रों पद्यों की स्वाध्याय आपका स्वभाव बन गया है।

आज भी आपको ‘दसवेआलिय’ नाम माला, न्यायकर्णिका, नीति-शतकम्, जैन सिद्धान्त दीपिका, शान्तसुधारस, सिन्दूर प्रकर, ‘षड्दर्शन’ आदि अनेकों ग्रन्थ सम्पूर्ण रूप से कण्ठाग्र हैं।

न्याय सिद्धान्त, दर्शन और व्याकरण का आपने गहन अध्ययन किया है। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत भाषा पर पूर्ण अधिकार है। अंग्रेजी भाषा में भी आपकी अच्छी गति है। आपका अध्ययन आचार्य प्रवर की पावन सन्निधि व साध्वी श्री मंजुलाजी की देख-रेख हुआ।



सब दृष्टियों से पूर्ण योग्य समझकर गंगाशहर मर्यादा महोत्सव के अवसर पर सं० २०२८ की माघ कृष्णा त्रयोदशी को युगप्रधान आचार्य प्रवर ने साध्वीप्रमुखा के रूप में आपका मनोनयन किया। उस समय आप से ४१७ साधवियाँ रत्नाधिक थीं। आज भी लगभग ४०० साधवियाँ दीक्षा-पर्याय में ज्येष्ठ हैं। आपके नम्र व्यवहार को देखकर सब आश्चर्यचकित हैं। आप एक कुशल अनुशासिका, विज्ञ व्यवस्थापिका व सफल संचालिका होने के साथ-साथ सफल संपादिका व लेखिका भी हैं।

आपकी सतत प्रवाहिनी लेखनी जनजीवन को नया चिन्तन, नव्यप्रेरणा व नूतन सन्देश देती है। आगम सम्पादन के गुरुतर कार्य में भी आप सतत संलग्न हैं। आचार्यप्रवर के प्रमुख काव्य—कालूयशोविलास, डालिम-चरित्र, माणक महिमा, नन्दन निकुंज, चन्दन की चुटकी भली का आपने सफलतापूर्वक सम्पादन किया। 'आचार्यश्री तुलसी दक्षिण के अंचल में' आपकी अपूर्व कृति है और 'सरगम' में आपकी काव्यमयी प्रतिभा की एक झलक मिलती है जो भक्तिरस से ओत-प्रोत है।

आपका समर्पण भाव अनूठा है। आचार्यश्री के हर इंगित को समझकर उसको क्रियान्वित करती हैं। नियमितता तथा संकल्प की दृढ़ता आपके जीवन की विशेष उपलब्धि है—जिसके फलस्वरूप इतने व्यस्त कार्यक्रम में भी आप जो करणीय है, वह करके ही रहती हैं।

आपके महान् व्यक्तित्व और कर्तृत्व को शब्दों की सीमा में आवद्ध करना शक्य नहीं है। आप आने वाले सैकड़ों युगों तक जन-जन का मार्ग प्रशस्त करती रहेंगी।

